

बेगमपुरा

सत्ता और समाज परिवर्तन का ब्लू प्रिंट



ईश कुमार गंगानिया

जन्म:

15 अगस्त 1957

शिक्षा:

एम.ए. (अंग्रेजी व राज. विज्ञान)
व बी.एड.

कृति:

हिंदी में-

12 काव्य संग्रह, 1 ग़ज़ल संग्रह,
1 कहानी संग्रह, 1 उपन्यास,
2 पुस्तकें मूलनिवासियों के संघर्ष पर,
8 किताबें साहित्यिक आलोचना व
समकालीन मुद्दों पर व एक आत्मवृत्त

अंग्रेजी में-

1 कहानी संग्रह, 1 उपन्यास,
1 कविता संग्रह, 1 ओटोबायोग्राफी

ikgangania@gmail.com

बेगमपुरा को समझने के लिए पहले तथागत बुद्ध के पटिच्चसमुप्पाद के सिद्धांत पर सरसरी तौर पर नजर डालना जरूरी महसूस हो रहा है। विकिपीडिया के अनुसार-‘कोई भी घटना केवल दूसरी घटनाओं के कारण ही एक जटिल कारण-परिणाम के जाल में विद्यमान होती है। प्राणियों के लिये इसका अर्थ है-कर्म और विपाक (कर्म के परिणाम) के अनुसार अनंत संसार का चक्र, क्योंकि सब कुछ अनित्य और अनात्म (बिना आत्मा के) होता है, कुछ भी सच में विद्यमान नहीं है। हर घटना मूलतः शून्य होती है। परंतु, मानव, जिनके पास ज्ञान की शक्ति है, तृष्णा को, जो दुःख का कारण है, त्यागकर, तृष्णा में नष्ट की हुई शक्ति को ज्ञान और ध्यान में बदलकर, निर्वाण पा सकते हैं।’

बेगमपुरा को यदि पटिच्चसमुप्पाद की रोशनी में देखें तो संत रैदास दुखी हैं, उनके दुख का कारण शहर यानी राज्यत के चरित्र का अमानवीय व शोषणकारी हो जाना है। रैदास के दिमाग में इसके कारण के निवारण के रूप में बेगमपुरा की अवधारणा

का उदय होता है। ऐसी अवधारणा का उदय रैदास जैसे जागरूक, जिम्मेदार, संवेदनशील व विवेकशील नागरिक के ज़हन में होना स्वाभाविक है। जाहिर है, ऐसा उन्हीं के साथ होता है जो धारा के विरुद्ध तैरने का साहस रखते हैं। बेगमपुरा की अवधारण किसी व्यवस्था विशेष से पलायन की नहीं है, बल्कि एक नई व्यवस्था के ब्लूप्रिंट जैसी है। रैदास जैसा साहस आज भी देखने में दुर्लभ लगता है। आज के हालात रैदास के काल से कोई ज्यादा अलग नहीं हैं। पहले हम बाहर वालों के गुलाम थे, आज तथाकथित अपनों के गुलाम हैं। दोनों की स्थितियों में हम ‘गुलामी’ के दंश को झेलने के लिए अभिशप्त हैं।

इसी गुलामी के कारण आज भी हम यानी आम आदमी बुरी तरह त्रस्त हैं। हमारी जीवन स्थितियां बद से बदतर होती जा रही हैं। ऐसा नहीं लगता कि जैसे हम लोकतंत्र में और संविधान के शासन में जीवनयापन कर रहे हैं; क्योंकि जिन्हें हमने अपने बेहतर भविष्य के लिए चुना है, वे

अपना भविष्य बनाने में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें आम जनता के विषय में सोचने-विचारने के लिए फुर्सत ही नहीं है। वे जनता के पास तभी आते हैं, जब उन्हें अगले पांच वर्ष के लिए अपना कार्यकाल रिन्यू कराना होता है या अपनी कुर्सी सुरक्षित करनी होती है। इस इसके बावजूद प्रत्येक जागरूक व्यक्ति के पास ऐसी विषम परिस्थितियों में भी अपने सुकून को लेकर बेगमपुरा जैसे यूटोपिया के लिए पर्याप्त स्पेस होता है।

यह अलग बात है कि आज का व्यक्ति अपने निजी हितों या नफे-नुकसान तक सिमट कर रह गया है। इसलिए वह अपने हाथ-पैर व जुबान तभी चलाता है जब उसके निजी हित आहत होते हैं। यदि उसका पेट भरा है, तो उसे भूख व अन्याय के विरुद्ध चीख-पुकार कितनी भी भयावह क्यों न हो, वह मूक-बधिर ही बना रहता है। उसके क्रियाकलाप आत्मकेंद्रित हो चले हैं। कई बार तो वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लोकतंत्र के साथ खिलवाड़ करने वाली ताकतों के साथ खड़ा नजर आता है। मगर रैदास जैसे संतों के साथ ऐसा नहीं था। रैदास यद्यपि वह बहुत सरल व साधारण आजीविका के साथ जिंदगी जीते थे, मगर उनका दिल पूरे समाज, देश व मानवता के लिए धड़कता था।

जहां तक आज के तथाकथित आधुनिक संतों और बाबाओं का सवाल है, कुछ तो बलात्कार जैसे नए कीर्तिमान स्थापित कर भारतीय जेलों की शोभा बढ़ा रहे हैं। कुछ सरकार का भोंपू बन अपने व्यापार में चार चांद लगा रहे हैं। कुछ प्रत्यक्ष व

परोक्ष रूप से सत्ता के प्रचार मंत्री की भूमिका में स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। कुछ ऐसे भी तथाकथित संत-महात्मा हैं, जो धर्म के नाम पर समाज में सौहार्द और अमन-चैन स्थापित करने की बजाय धार्मिक उन्माद फैलाने में एड़ी चोटी तक का जोर लगाते हैं और अपने वचस्वों का परचम लहराते हैं।

कुछ ऐसे साधु-संत भी हैं, जो सत्ता के पक्ष में जनता के वोट की दलाली में लिप्त हैं। जब भी सत्ता को उनसे अपने हित में ऊल-जुलूल ब्यान दिलाने होते हैं, वे इन्हें हरी झंडी दिखाते हैं और जनता भेड़-बकरी की तरह सत्ता के बाड़े में ले आते हैं, सत्ता इनका दोहन करती है और ये वापस अपने-अपने दड़बों में लौट जाते हैं। इनके लिए तो बूढ़ा मरे या जवान,

“संत रैदास तत्कालीन सत्ता और समाज के अवसरवादी लोगों द्वारा पैदा की गई अराजकता के विरुद्ध डटकर खड़े होते हैं। गौरतलब है, जिस दुःख का शिकार जनसाधारण है, रैदास खुद अपने आपको इससे बाहर नहीं मानते।”

इन्हें तो सिर्फ हत्या से काम रहता है। इन्हें देश-दुनिया के हित-अहित व अच्छे-बुरे से कोई लेना-देना नहीं है। लगता है, इन कूपमंडूपों की देश-दुनिया के बारे में कुछ सोचने-समझने की औकात ही नहीं है। हां, एक बात जरूर है कि जहां कहीं संख्या या शक्ति प्रदर्शन की जरूरत होती है, वहां ये नमक का हक अदा करने से कभी पीछे नहीं

हटते। खैर...

जब हम रैदास और संत परंपरा के संतों के बारे में विचार करते हैं एक अद्भुत सुकून की अनुभूति होती है। रैदास अपनी आजीविका के लिए परंपरागत जातीय पेशे से जीवन की जरूरतों का सामान जुटाते हैं; यानी स्वाभिमान से परिपूर्ण आत्मनिर्भर जीवनयापन करते हैं। इसके साथ-साथ वे अपनी संतई के क्षेत्र में अपनी जागरूकता और तर्क-विवेक के अद्भुत कीर्तिमान स्थापित करते हैं। उनका चिंतन-दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक लगता है, जितना उस काल में रहा होगा, जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसी ही आत्मनिर्भरता संत कबीर और इनके अन्य समकालीन संतों में नजर आती है। यह संत परंपरा और इसके अनुसरणकर्ताओं के लिए बेहद फख्र का विषय है।

इससे भी बड़े फख्र की यह बात है कि उनमें तर्क-विवेक के साथ-साथ उनके सोचने का कैनवास बेहद बड़ा है। इसमें समाज, राष्ट्र और मानवता के प्रति समर्पण और ईमानदारी कूट-कूट कर भरी लगती है। परिणामस्वरूप, संत रैदास तत्कालीन सत्ता और समाज के अवसरवादी लोगों द्वारा पैदा की गई अराजकता के विरुद्ध डटकर खड़े होते हैं। गौरतलब है, जिस दुःख का शिकार जनसाधारण है, रैदास खुद अपने आपको इससे बाहर नहीं मानते। वे चारों ओर व्याप्त तृष्णा के शिकार नहीं होते और न ही दुःख में डूबकर निराश-हताश ही होते हैं। वे अपनी इच्छा शक्ति को ज्ञान और ध्यान में व्यय करते हैं, जो निर्वाण का मार्ग है।

गौरतलब है कि यहां रैदास का लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति नहीं, बल्कि दुख पैदा करने वाली तत्कालीन परिस्थितियों से निजात पाना है। क्योंकि ये परिस्थितियां व्यक्ति के जीवनयापन और प्रगति के मार्ग में बाधक हैं। संत रैदास की नजर में इन बाधाओं का विकल्प कुछ और नहीं बल्कि बेगमपुरा है। बेगमपुरा का मतलब ऐसा शहर, ऐसा राज्य जहां व्यक्ति सारे गमों से दूर हो और सुखमय जीवन का निर्वाह कर सकें। बेगमपुरा की अवधारणा को प्रस्तुत करने वाली कविता निम्न-लिखित है—

बेगमपुरा सहर का नाऊं, दुःख अंदेस नहीं तिहिं जाऊं॥

ना तसबीस, खिराजु न मालू, खौफ न खता न तरसुजवालु।

अब मोहि खूब बतनगह पाई, ऊहां खैरि सदा मेरे भाई।

काइमुदाइमु सदा पातिसाही, दाम न, साम एक सा आही।

आवादानु सदा मसहूर, ऊहां गनी बसहिं मामूर।

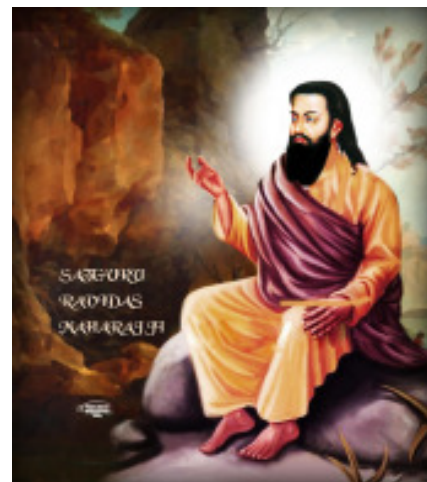
तिउं-तिउं सैर करहिं जिउं भावै, हरम महल मोहिं अटकावै।

कह रैदास खलास चमारा, जो उस सहर सों मीत हमारा।

मौजूदा कविता के बारे यह कहना अनिवार्य महसूस हो रहा है कि मुझे नहीं मालूम कि यह कविता कितनी मौलिक है और कितनी नहीं। मुझे यह भी नहीं मालूम कि इसमें सारे शब्द मौलिक हैं या रैदास पर काम करने वाले शोधार्थियों ने अपनी सुविधानुसार इनमें कुछ हेर-फेर कर दिया है। लेकिन एक दावा अवश्य कर सकता हूं कि जब हम कविता

को सार रूप में देखते हैं तो यह रैदास के चिंतन-दर्शन के रूप में काफी हद तक मुकम्मल नजर आती है। मेरे लिए इस अपरिचित शब्दावली वाली कविता को संदर्भ सहित सरल शब्दों में व्यक्त करना थोड़ा मुश्किल काम था; लेकिन मैंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार इसके साथ न्याय करने का भरपूर प्रयास किया है। अब मैं इसके साथ कितना न्याय कर पाया हूं, यह अपने आप में एक अलग विचारणीय बिंदु हो सकता है।

‘बेगमपुरा’ नामक कविता स्पष्ट प्रमाण है कि संत रैदास अपने समय की शासन-व्यवस्था और अपने आस-पास की परिस्थितियों से बेहद असंतुष्ट थे। इससे मुक्ति के लिए संत रैदास एक ऐसे शहर यानी ऐसे देश की परिकल्पना करते हैं, जो सभी प्रकार के गमों व दुखों से मुक्त हो। वे इसे बेगमपुरा यानी बिना गमों का शहर की संज्ञा देते हैं। रैदास के ख्यालों या यूं कहें कि उनके चिंतन-मनन की दुनिया में बेगमपुरा नामक एक शहर है। यह ऐसा शहर है जहां दुख का अंदेसा तक नहीं है। इसलिए रैदास बेगमपुरा जाने की बात करते हैं। वे दुख के कारणों को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि यहां किसी प्रकार का गैर-कानूनी टैक्स (संभवतः जजिया जो गैर-मुस्लिम से जबरन वसूला जाता था और इसे अदा न कर पाने की स्थिति में व्यक्ति को अनेक प्रकार की यातनाओं से गुजरना पड़ता था) नहीं है और न ही यहां जमीन और माल के उत्पादन पर कोई टैक्स है। यहां वैचारिक अभिव्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता है कि बोलने से



जन रैदास

होने वाले किसी अपराध के भय से जुबान तरसती नहीं है यानी बेगमपुरा में अपनी बात कहने के लिए या किसी संबंध में कोई प्रतिक्रिया देने के मामले में किसी से डरने की जरूरत नहीं है।

रैदास आगे बताते हैं कि अब मुझे अपनाने या रहने लायक एक बेहतरीन वतन का पता चल गया है। वहां सभी मेरे भाई अमनचैन से रह सकते हैं। वहां पर किसी एक कौम को शासन नहीं है और न ही वहां कोई भेदभाव ही चलता है। जैसाकि हमारे यहां काम और दाम का निर्धारण शासक की कौम की इच्छानुसार चलता है जिसमें कदम-कदम पर छल-कपट की भरमार है। यहां कौम के शासन व छल-कपट से संत रैदास का आशय जातीय ऊंच-नीच व धार्मिक भेदभाव हो सकता है। जिस शहर की बात संत रैदास बात कर रहे हैं उनकी मान्यता है कि वहां व्यक्ति के योगदान की कदर होगी और अच्छे कार्य के लिए व्यक्ति को पुरस्कार व शौहरत मिलेगी, इसलिए वे आगे बताते हैं कि यह

ऐसी व्यवस्था होगी जहां गुणवान और मर्मज्ञ लोगों का निवास होगा।

जाहिर है, रैदास का काल जातीय व धार्मिक छल-कपट से परिपूर्ण रहा होगा और वहां न व्यक्ति के योगदान को महत्व होगा और न ही गुणवान और मर्मज्ञ लोगों की कद्र ही रही होगी। साफ है कि उस काल में श्रेष्ठता व निकृष्टता का पैमाना भी कौम के आधार पर तय होता होगा। यहां कौम का संबंध इस्लामी शासकों से है। बाबा साहब स्वयं ब्राह्मणों के ऐसे ही दोहरे मानदंडों की बात अनेक बार विस्तार से और उदाहरण सहित कर चुके हैं। कह सकते हैं कि रैदास को ऐसी खामियों के नायाब विकल्प के रूप में 'बेगमपुरा' की घोषणा करनी पड़ी।

रैदास का दुख इतने तक सीमित नहीं था। इसलिए रैदास ने अपने दुख के शमन के लिए इच्छानुसार सैर या भ्रमण करने की स्वतंत्रता की बात आगे बढ़ाई। संभवतः वहां सैर और भ्रमण की वैसी सुविधा नहीं होगी, जैसी संत रैदास व्यक्ति के लिए जरूरी समझते थे। आज इस भ्रमण और सैर का संबंध भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के रूप में व्यक्त उस अवधारणा से मेल खाता है, जिसके अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को अपने देश में कहीं भी आने-जाने, जमीन-जायदाद खरीदने और निवास करने की आजादी है। संत रैदास इस भ्रमण या सैर की अवधारणा को विस्तार देते हुए कहते हैं कि बेगमपुरा में इबादतगाह में किन्हीं महलों जैसी किलेबंदी नहीं होगी यानी शासक और धर्मगुरु किन्हीं विशेषाधिकारों से लैस

नहीं होंगे; वे सभी आम आदमी की पहुंच से बाहर नहीं होंगे।

अपनी कविता के अंत में रैदास बड़े आत्मविश्वास के साथ अपनी पहचान को जग जाहिर करते हुए बताते हैं कि यह कोई और नहीं कह रहा है बल्कि खलास चमारा यानी विशुद्ध रूप से एक चमार जाति का सामान्य व्यक्ति कह रहा है और यह दावा कर रहा है कि जो व्यक्ति ऐसे शहर के पक्ष में है वही हमारा मीत है। जो इसके पक्ष में नहीं हैं यानी जो बर्बर सत्ता या अलौकतांत्रिक समाज के साथ हैं, वे हमारे मीत नहीं हैं। मुझे ऐसा लगता है यहां मसला रैदास के प्रिय, चहेते या कृपापात्र हो जाने तक सीमित नहीं है। यह मीत हो जाना रैदास जैसी विचारधारा की ब्रोडर यूनिटी का हिस्सा हो जाना है, जिसके दम पर सत्ता पर दबाव बनाया जा सके और अन्यायपूर्ण व्यवस्था को हतोत्साहित किया जा सके।

अगर यह कहा जाए कि बेगमपुरा की घोषणा, सत्ता व समाज परिवर्तन का एक घोषणा-पत्र जैसा है तो इसे पूरी तरह नकारा नहीं जा सकता। दरअसल, उस जमाने में तख्तापलट जैसी परिस्थितियां नहीं थी और न ही किसी विदेशी सहयोग जैसा प्रचलन ही उस जमाने था। अगर ऐसी थोड़ी-बहुत कुछ संभावनाएं थी, तो वे संत रैदास जैसे व्यक्ति की पहुंच से बाहर थी। स्पष्ट है कि 'बेगमपुरा' शहर या राज्य की अवधारणा तक सीमित नहीं है, जहां संत रैदास जाना चाहते हैं। मेरी प्रबल मान्यता है कि यह संत रैदास की सत्ता व बर्बर समाज को अप्रत्यक्ष चुनौती थी।

इस हकीकत से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि बिना सत्ता परिवर्तन के बेगमपुरा जैसी लोकतांत्रिक व लोक-कल्याणकारी व्यवस्था संभव नहीं है। इसलिए कहने में संकोच नहीं कि संत रैदास ने बेगमपुरा शहर की कल्पना ही नहीं की थी, बल्कि सत्ता व समाज परिवर्तन का ब्लूप्रिंट तैयार किया था। ऐसे ब्लूप्रिंट की आज भी जरूरत है और इसे हकीकत का जामा पहनाने की भी, लेकिन लगता है कि आज की पीढ़ी ने गुलामी को दिल से अंगीकार कर लिया है और उसमें संत रैदास जैसा सपना देखने तक की कुव्वत शेष नहीं रह गई है।

मुझे लगता है कि पाठकों को यह भी जानना जरूरी है कि बेगमपुरा की अवधारणा का जन्म यूं ही बैठे-बिठाए मौज-मस्ती में क्षणिक ही हो गया होगा। इस बिंदु पर सहमति-असहमति के अनेक पक्ष हो सकते हैं लेकिन मैं मेरी निजी मान्यता है कि बेगमपुरा संत रैदास की लम्बे। अरसे से दुख को झेलने का परिणाम है। संत रैदास द्वारा प्रस्तुत इसके विकल्प को लंबे चिंतन-मनन के परिणाम के रूप में देखा जाना चाहिए। इस दुख यानी अव्यवस्था को समझने के लिए संत रैदास के विभिन्न मुद्दों पर अभिव्यक्त विचार से रूबरू होना पड़ेगा।

बेगमपुरा को बर्बर सत्ता के तख्तापलट का रूप अख्तियार करने के पीछे संत रैदास की जो पहली पीड़ा है वह जातिवाद के दंश को लेकर है। समाज की तथाकथित निचली जातियां यह दंश हिंदुओं के स्तर पर ही नहीं झेलती थी, बल्कि

मुसलमानों के स्तर पर भी झेलने को बाध्य थी। इस जातीय दंश को संत रैदास कुछ इस प्रकार बयान करते हैं—

जात-जात में जात है, ज्यों केलन में पात।

रैदास न मानुष्य जुड़ सके, ज्यों लौ जात न जात॥

जात-जात के फेर महि, उरझी रहई सब लोग।

मानुषता को खात है, रैदास जात का रोग॥

उपरोक्त लाइनों में संत रैदास द्वारा व्यक्त जातियों की विभीषिका को आसानी से समझा जा सकता है। वे जातीय संरचना की तुलना केले पत्तों से करते हैं। जब हम केले एक पत्ते को अलग करते रहते हैं तो दूसरा निकल आता है फिर तीसरा और नए पत्ते निकलने का सिलसिला निरंतर चलता रहता है। संत रैदास का जातियों को केले के पत्तों से तुलना करने का आशय जातियों की संरचना को अंतहीन व कॉम्प्लेक्स संरचना के रूप में देखना था। संत रैदास कहते हैं कि मनुष्य का पूरा जीवन जाति के प्रपंचों में उलझ कर रह जाता है; और यह जाति का रोग इंसान से उसकी इंसानियत छीनकर उसे हैवान बनाता है। जाति की तत्कालीन परिस्थितियों के चलते संत रैदास मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने और मनुष्यता के संरक्षण के लिए बेगमपुरा जैसे सत्ता और समाज परिवर्तन जैसे टूल किट की खोज करते हैं।

एक ओर यहां जाति की पराधीनता है। संत रैदास इसके अतिरिक्त एक दूसरी पराधीनता की बात करते

हैं, जो जाति की समस्या के साथ-साथ अन्य बड़ी समस्याओं का जन्म देती है। यह समाज द्वारा पोषित नहीं, बल्कि राजनीतिक सत्ता द्वारा थोपी गई पराधीनता होती है। इसके अपने अनेक प्रकार के खतरे हैं, मुसीबतें हैं। संत रैदास राजनीतिक पराधीनता को कुछ इस प्रकार साझा करते हैं—

पराधीन पाप है जान लेहू रे मीत।

‘रैदास’ दास पराधीन सो कौन करै है प्रीत॥

पराधीन कौ दीन क्या, पराधीन बे-दीन।

रैदास दास पराधीन कौ, सबहिसमझै हीन॥

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि रैदास पराधीनता को पाप के रूप में देखते हैं, एक अपराध के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं कि पराधीन व्यक्ति से कोई प्रीत नहीं करता है। जाहिर है, पराधीन व्यक्ति सभी प्रकार के भेदभाव का शिकार होता है। अपनी पीड़ा को मुखरता प्रदान करते हुए संत रैदास कहते हैं कि गुलाम व्यक्ति का कोई धर्म नहीं होता यानी उसके धर्म, उसकी मान्यताओं की कोई कद्र नहीं होती। गुलाम व्यक्ति को हमेशा छोटा समझा जाता है। इसी पराधीनता के चलते संत रैदास बेगमपुरा में जमीन पर टैक्स, माल के उत्पादन पर टैक्स और सबसे अधिक पीड़ादायक टैक्स है ‘जजिया’।

यह टैक्स सत्ताधारी इस्लामिक मजहब के अतिरिक्त दूसरे मजहब के लोगों से लिया जाता था जिसकी अदायगी न होने की स्थिति में व्यक्ति को अनेक प्रकार से शारीरिक व मानसिक यातनाओं का सामना करना पड़ता था। इस टैक्स को गरीब हिंदुओं

के इस्लाम में धर्मांतरण के औजार के रूप में देखा जाता है। दूसरे धर्मों को लूट के दम पर कमजोर व अस्थिर करने के रूप में देखा जा सकता है। इस संदर्भ में इस हकीकत से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि गुलाम के रूप में जब व्यक्ति का कोई मान-सम्मान नहीं था उसके कार्यों का सम्मान कैसे हो सकता है। संत रैदास पराधीनता के उत्पन्न सारी पीड़ाओं से मुक्ति का मार्ग बेगमपुरा में तलाशते हैं।

गौरतलब है, शोषण-उत्पीड़न के मामले में यदि सत्ता और बहुसंख्यक समाज का गठजोड़ हो जाता है, तो उत्पीड़ित की स्थिति बेहद दयनीय या यूं कहें कि असहनीय हो जाती है। यदि हम अभी पांच-सात वर्ष के भाजपाई कार्यकाल को देखें स्थितियां स्पष्ट हो जाती हैं। वर्तमान सत्ता द्वारा धार्मिक बहुलतावादी समाज की पीठ पर हाथ रखने के परिणाम हमारे सामने हैं। इतना ही नहीं नागरिकता संशोधन कानून और धारा 370 से जुड़े मसले ऐसे हैं जो सत्ताधारी समाज की तानाशाही में हिंदू बहुलतावादी समाज की निरंकुशता को पंख लगाते हैं, और साम्प्रदायिकता की आग में घी डालने का काम करते हैं।

संभवतः संत रैदास भी ऐसी ही विषम स्थितियों का सामना कर रहे हों, जिस प्रकार की परिस्थितियों का सामना आज का मुस्लिम, दलित व अन्य कमजोर वर्ग कर रहे हैं; यानी अपने आप को असुरक्षित व भयभीत महसूस कर रहे हैं। इसलिए मुझे लगता है कि बर्बर सत्ता और बहुलतावाद की जुगलबंदी के नेक्सस को तोड़ने

के लिए 'बेगमपुरा' से बेहतर और कोई दूसरा विकल्प नहीं हो सकता। मुझे लगता है हमें बेगमपुरा को पराधीनता की बेड़ियों को खोलने वाली चाबी या बेड़ियां तोड़ने के रूप में देखे जाने की जरूरत है, न कि इसे किसी शहर या राज्य की अवधारणा के रूप में। सत्ता परिवर्तन या सत्ता और समाज की मानसिकता परिवर्तन के बिना अन्य किसी चाहत के कोई मायने ही नहीं रह जाते।

अगर हम संत रैदास के काल की परिस्थितियों की रोशनी में वर्तमान परिस्थितियों पर गंभीरता से दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि आज की सरकारी नीतियां गरीब विरोधी हैं। इन नीतियों से दलित-शोषित व मुस्लिम जो अधिकतर गरीब हैं, ज्यादा बुरी तरह प्रभावित नजर आते हैं। यदि संत रैदास के चिंतन-दर्शन को मार्क्सवादी नजरिए से देखें तो 'अमीर' एक कौम में तब्दील नजर आती है और दूसरी कौम 'गरीब'। गरीबों की दुर्दशा का मंजर देखने के लिए पहले नोटबंदी को देखा जा सकता है, जिसमें लाखों लोगों के व्यवसाय तबाह हो गए और सैंकड़ों की संख्या में असामयिक मौत भी किसी से छिपी नहीं हैं। दूसरे ऐपीसोड के रूप में कोरोना की पहली लहर के दौरान मजदूरों का पलायन, उनकी भयंकर दुर्दशा और सैंकड़ों दर्दनाक मौतों के रूप में देखा जा सकता है।

इस दौरान न कहीं सरकार नजर आती है और न ही गरीबों की आखिरी उम्मीद-'अदालत'। यह पराधीनता जैसी स्थिति की ओर संकेत करती है। कोरोना की तीसरी लहर का कहर

ऐसा बेकाबू हुआ कि इसने आज की सारी हदों को ही पार कर दिया। यहां मुद्दा वर्तमान हालात की समीक्षा करना नहीं है बल्कि इन्हें पराधीनता के साथ तुलनात्मक अध्ययन के रूप में ठीक से समझना है ताकि संत रैदास के काल और वर्तमान पीड़ित समाज की मनस्थिति को समझा जा सके और पराधीनता से मुक्ति के लिए बेगमपुरा जैसे किसी मार्ग की तलाश की जा सके।

जब संत रैदास 'कौम की सत्ता' और सामाजिक असमानता से आजादी का ब्लूप्रिंट को तो 'बेगमपुरा' के रूप में पेश कर देते हैं लेकिन बेगमपुरा में लोगों की जीवन शैली और क्रियाकलापों के विस्तार से जुड़े अन्य पहलुओं को खुलासा होना भी बेहद जरूरी है; तभी तो संत रैदास के मीत लोगों की संख्या में इजाफा होगा और स्वतंत्रता का सपना साकार होगा। इसके लिए सबसे पहले धर्म की स्थिति स्पष्ट होना जरूरी है। सत्तासीन कौम का अपना धर्म होता है। जिस धर्म के व्यक्तियों के हाथ में सत्ता होती है, आमतौर पर उसका अपना एक हिडन ऐजेंडा होता है। वे अपने धर्म को प्रोत्साहित करते हैं और दूसरे धर्मों को हतोत्साहित।

ऐसी परिस्थितियां विभिन्न धर्मों की अपनी सत्ता और धर्म की राजनीति विभिन्न धर्मों को सत्ता के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं। इसके बाद अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने की जंग शुरू होती है। यह भी तय ही है कि जंग में किसी का भला नहीं होता और जाने-अनजाने सभी इंसानियत की जंग हार जाते हैं। कहने

की जरूरत नहीं कि उस दौर में भी धर्म की इस जंग में हिंदू और मुस्लिम दो विरोधी पार्टियां आमने-सामने थी और आज भी ये दोनों ही आमने-सामने खड़े नजर आते हैं। फर्क इतना है कि पहले सत्ता मुसलमानों के हाथ में थी और कह सकते हैं कि आज यह सत्ता हिंदुओं के हाथ में है। उस समय की जंग को विराम देने की गरज से संत रैदास कहते हैं—

मंदिर-मस्जिद एक हैं, इन मह अंतर नाहिं।

रैदास राम-रहमान का, झगड़ऊ कोऊ नाहिं॥

धरम की कोई जाति नाहिं, न धर्म जाति के माहिं।

रैदास सो चले धर्म पर, करेगे धरम सहाय॥

जाहिर है, संत रैदास हिंदू और मुस्लिम दोनों से अपनी अलग राय रखते हैं। इसलिए वे जहां एक ओर कौम के शासन की कुरूपता को बेनकाब करते हैं, वही दूसरी ओर वे मंदिर-मस्जिद व राम-रहीम के झगड़े की आग में पानी डालने का काम करते हैं। वे तथागत बुद्ध की तर्ज पर व्यक्ति को अपना दीपक खुद बनने की सीख देने की गरज से बताते हैं कि धर्म की न कोई जाति होती है और जाति का कोई धर्म। यहां वे इंसानियत को इंसान के धर्म के रूप में देखते नजर आते हैं और इसे ही असली धर्म-कर्म के मार्ग के रूप में देखते हैं। संत रैदास बेगमपुरा में जात-धर्म के कोढ़ और इसकी खाज से मुक्त रखने के पक्षधर हैं क्योंकि ये विवादों को जन्मत देते हैं और इंसान प्रगति व खुशहाली में बाधक हैं।

हम इस बात से भली-भाँति परिचित हैं लेकिन आज भी यह कोढ़ हमारा पीछा नहीं छोड़ रहा है। भले ही आज हम लोकतांत्रिक व्यवस्था में रह रहे हैं जहाँ जातिवाद व साम्प्रदायिकता के लिए कोई जगह नहीं है, लेकिन हम जातिवाद और सम्प्रदायवाद के कोढ़ से मुक्त नहीं हैं। आज सत्ता हिंदू बहुल वर्ग के हाथ में है, जिसके चलते हम आज भी हिंदू-मुस्लिम भावनाओं को भड़काकर अपनी सत्ता पर काबिज रहना चाहते हैं। धर्म और जाति का धिनौने खेल समाज और राजनीति में जमकर खेला जा रहा है। संत रैदास इसे बेगमपुरा में एकदम वर्जित करार देते हैं। यह उनके चिंतन-दर्शन के धर्म-निरपेक्ष चरित्र से साक्षात्कार करता है और इसे अनुकरणीय बताता है, जिसमें सभी के हित सुरक्षित हैं।

संत रैदास का बेगमपुरा एक प्रकार से सत्ता व समाज के प्रति विद्रोह का बिगुल फूंकने जैसा है और दोनों को परास्त कर अपना नया शहर यानी अपना नया संसार बनाने जैसा है। मान लो संत रैदास का बेगमपुरा तो बन गया; उसमें शासन व समाज की कुरीतियों के लिए कोई जगह नहीं है, लेकिन इस बेगमपुरा में रहने वालों के जीवनयापन की शैली का उल्लेख बेगमपुरा नामक कविता में मौजूद नहीं है। यदि यह कहा जाए कि बेगमपुरा में व्यक्तियों की जीवनयापन की शैली के अभाव में यह विद्रोह अधूरा है, तो गलत नहीं होगा। मगर इसकी पूर्ति के लिए संत रैदास अपने विचार अन्य स्थानों पर व्यक्त करते हैं जो जीवनयापन की शैली के संबंध में

बेगमपुरा की पूर्णता के मार्ग में आने वाली बाधा को दूर करने में सक्षम है। संत रैदास के अनुसार—

रैदास श्रम करि खाइए, जौ लौ पार बसाय।

नेक कमाई, जो करहूँ, कबहूँ न निहफल जाय॥

श्रम को ईसर जानि के, जऊ पूजहिं दिन रैन।

रैदास तिम्हाहि संसार में, सदा मिलिहिं सुख चैन॥

यहाँ संत रैदास का फोकस कमा कर खाने से है। वो कहते हैं कि जब तक व्यक्ति के वश चले उसे कमाकर खाना चाहिए। वो परिश्रम और ईमानदारी से की गई कमाई को नेक कमाई कहते हैं। वे अपने अनुभव से दावा करते हैं कि यह मेहनत की कमाई कभी व्यर्थ नहीं जाती।

संत रैदास इससे एक कदम और आगे बढ़कर इस नेक कमाई के लिए किए गए श्रम को ईश्वर की संज्ञा देते हैं। वे दिन-रात इसकी पूजा की बात करते हैं। यहाँ पूजा का संबंध सर्वोच्च सम्मान से है। वे श्रम को सर्वोच्च सम्मान से भी और अधिक ऊँचे पायदान पर रखकर श्रम को पवित्रता का जामा पहनाते हैं। संत रैदास इतने पर ही नहीं रुकते वह घोषणा करते हैं कि संसार में सुख-चैन का इससे बेहतर कोई विकल्प नहीं है।

यह बेहद सुकून का विषय है कि रैदास पूजा पाठ की परजीवी संस्कृति को श्रम से रिप्लेस कर एक महान क्रांतिकारी काम करते हैं। जहाँ भी वे अपने राम का जिक्र करते हैं कि हमें यह मानकर चलना चाहिए

कि उनका राम दशरथ सुत नहीं है। यह राम हमारे शरीर में रमा हुआ है और शरीर में ही क्यों यह पूरे संसार में विद्यमान है। मुझे लगता है कि संत रैदास के राम और ईश्वर दोनों श्रम के पर्याय हैं और इसके अतिरिक्त और कोई नहीं।

रैदास हमारो राम जी, दशरथ करि सुत नाहिं।

राम हमउ महिं रमि, विसव कुटुंब हमाहि॥

संत रैदास की यह अवधारणा हमें चार्वाक व लोकायत संस्कृति की गोद में लाकर बैठा देती है; जिसका अनुगामी जन आजीवक है। यह लोकायत/चार्वाक संस्कृति भी पूरी तरह प्रकृति और व्यक्ति के श्रम यानी पुरुषार्थ पर टिकी है। इसके अनुसार— ‘लोकायत-सिद्धांत अनुगामी जन ही ‘आजीवक’ नाम से इसलिए अभिहित होते थे कि शरीरात्मवादी होने के कारण शरीर के सदुपयोगार्थ, उसकी रक्षा के लिए आजीवक को, अर्थात् श्रमात्मक आजीविका को, वे मुख्य कर्तव्य के रूप में अपनाते थे। एतदतिरिक्त यह भी कारण था आजीवक नाम से उनके पुकारे जाने का, कि वे श्रमोपयोगी स्वास्थ्य के लिए सदा सचेष्ट रहते थे, क्योंकि आजीवक का दूसरा अर्थ, पूर्ण रूप से जीवन का अर्थात् स्वास्थ्य जीवन का संपादन भी होता है। शरीर को आत्मा मानने वाले अपने स्वास्थ्य-स्वरूप जीवन के संपादन में सर्वथा सचेष्ट हों, यह सर्वथा युक्तिसंगत ही है। इन सारी बातों पर ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दर्शन जन-जीवन से घनिष्ठता रखने वाले कृषि, पशुपालन,

वाणिज्य आदि, राजनीति-स्वरूप दण्डनीति और स्वास्थ्यप्रद आयुर्वेद इन तीनों से पूर्ण रूप से सम्बद्ध था।' (आचार्य आनंद झा, चार्वाक दर्शन (दूसरा संस्करण 1983) नामक पुस्तक का प्राक्कथन, पृ. 8-9)

आजकल हमारे यहां वैज्ञानिक टेम्परमेंट का नारा खूब उछाला जाता है लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि व्यवहार से इसका कोई लेना-देना नहीं है। वैज्ञानिक टेम्परमेंट का नारा देने वाले कभी गणेश की गर्दन पर हाथी के सिर लगाने को जस्टिफाई करने लगते हैं, कभी रावण के दस मुंह, हनुमान को वायु से पैदा होने, हनुमान के पसीने से मछली के पेट से हनुमान का बेटे का पैदा हो जाता है... ये उदाहरण तो अंधविश्वास के समुद्र से चुल्लूभर पानी जैसा है वरना इनकी संख्या अथाह है, जो समाज को कोल्हू का बैल जैसा बनाकर छोड़ देता है। खैर...

मुझे लगता है संत रैदास का बेगमपुरा वर्तमान अंधविश्वास से कोई मेल नहीं खाता। संत रैदास अपने तर्क-विवेक के आलोक में इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं—

*'चख-विहीन कर तारिचलतु हैं
तिनहि न अस भुज दीजे।'*

अद्भुत तर्क है संत रैदास के पास। वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विहीन यानी अंधभक्तों को दृष्टि बाधित लोगों की जमात समझते हैं। वे अपने आपको यानी बेगमपुरा के निवासी जो बेगमपुरा की अवधारणा के पक्षधर और संत रैदास के अनुसार उनके मीत हैं, को इस दृष्टि बाधित लोगों की जमात से अलग मानते हैं। वे कहते हैं कि दृष्टि

बाधित लोग जिस प्रकार एक दूसरे की बांह पकड़कर और लाइन बनाकर चलते हैं, उस प्रकार मैं अपनी बांह किसी के हाथ में नहीं देने वाला। यह बात धर्म, राजनीति और जीवन से जुड़े प्रत्येक क्रियाकलाप से जुड़ती है, जिसपर संदेह करने के लिए कोई जगह नहीं है। स्पष्ट है कि वे अपने तर्क-विवेक को प्राथमिकता प्रदान करते हैं और अपने मार्ग स्वयं ईजाद करने के पक्षधर हैं। जाहिर है, रैदास के बेगमपुरा में तो वही चलेगा जो संत रैदास और उनके मीत यानी चाहने वालों के तर्क-विवेक की कसौटी पर खरा उतरेगा।

बेगमपुरा को लेकर एक अजीब-सा भ्रम पैदा होता है कि संत रैदास किसी शहर की बात कर रहे हैं जिसका नाम वे बेगमपुरा बताते हैं। लेकिन मैं शुरू से मानकर चल रहा हूं कि यह बेगमपुरा एक अकेला शहर नहीं है बल्कि शहरों और गांवों का समुच्चय है, जिससे मिलकर एक देश बनता है, राज्य बनता है। इससे भी बढ़कर संत रैदास का मुद्दा देश या राज्य की भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं है। इसका सीधा संबंध राज्य, के अंदर लोगों का जीवन कैसा होगा, इस पर अधिक फोकस करता है। जब हम संत रैदास के वैचारिक वन-उपवन की सैर करते हुए आगे बढ़ते हैं तो सारे भ्रम को तोड़ने वाले और मंजिल के निष्कर्षों पर पहुंचाने वाले एक विशाल दरख्त का दीदार होता है। इसे बेगमपुरा की सारी भागदौड़ की दूसरी पंच-लाइन भी कह सकते हैं, क्योंकि पहली पंच लाइन तो बेगमपुरा कोई शहर या

राज्य तक सीमित नहीं बल्कि सत्ता व समाज परिवर्तन का ब्लूप्रिंट है। यह दूसरी पंच-लाइन कुछ इस प्रकार है—
'ऐसा चाहो राज्य में, जहां मिलै सबन को अन्न।'

छोट-बड़ो सब सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न॥'

स्पष्ट है कि संत रैदास तर्क-विवेक और वैचारिक महासागर में गोता लगाने वाली कोई साधारण प्रतिभा नहीं हैं। वे एक गंभीर, ईमानदार व जिम्मेदार नागरिक हैं। तभी तो वे सारे गांव और शहर के सारे भ्रम को एक झटके में तोड़ देते हैं और अपनी अभिलाषा का खुलासा इन दो लाइनों में कर डालते हैं। संत रैदास सबसे पहली ख्वाहिश बताते हैं कि वो ऐसा राज्य चाहते हैं कि जहां सभी को अन्न यानी पर्याप्त खाद्य सामग्री उपलब्ध हो। इसे व्यापक अर्थों में देखें तो पाते हैं कि संत रैदास यहां व्यक्ति की मूलभूत भौतिक आवश्यकताओं व सुख-सुविधाओं की बात कर रहे हैं।

इस अभिलाषा की दूसरी कड़ी नागरिकों के समान रूप से बसने की बात करती है; अर्थात् समता, स्व तंत्रता और बंधुत्व की ओर संकेत देती है, जहां कोई भी छोटा-बड़ा नहीं होगा यानी सभी लोग समान होंगे। जाहिर है, समानता की अवस्था में ही भाईचारे का मार्ग प्रशस्त होता है। जब समानता और भाईचारे का माहौल होगा तब न तो बोलना कोई अपराध होगा और न जुबान को किसी अपराध के डर से मूक रहकर तरसना पड़ेगा। इस स्थिति को संत रैदास प्रसन्नता की संज्ञा देते हैं। यहां यह

“वे बेगमपुरा बर्बर व पूर्वाग्रही सत्ता के परिवर्तन का ब्लूप्रिंट तैयार ही नहीं करते बल्कि अपनी वैचारिक तर्क-शक्ति से समाज परिवर्तन का ब्लू प्रिंट भी तैयार करते हैं”

प्रसन्नता साधारण नहीं है, बल्कि परम-आनंद वाली अनुभूति है।

उपरोक्त चर्चा से साफ है कि बेगमपुरा के अस्तित्व में आने के पीछे तथागत बुद्ध के पटिच्चसमुप्पाद का सिद्धांत काम करता है। इसके चलते संत रैदास परिस्थितियों का अपने तर्क-विवेक के आधार पर अवलोकन करते हैं, तथ्यों का मूल्यांकन करते हैं और बेगमपुरा के रूप में अपनी रणनीति को अंतिम रूप दे देते हैं। संत रैदास शून्य रूपी घटनाओं को अपने कर्म और विपाक (कर्म का परिणाम) के रूप बेगमपुरा का मार्ग प्रशस्त करते हैं। बेगमपुरा बर्बर व पूर्वाग्रही सत्ता के परिवर्तन का ब्लूप्रिंट तैयार ही नहीं करता, बल्कि अपनी वैचारिक तर्क-शक्ति से समाज परिवर्तन का भी ब्लू प्रिंट तैयार करते हैं, जिसमें संत रैदास के मीत लोग निरंतर बेगमपुरा की ओर आकर्षित होंगे।

यदि हम संत रैदास के बेगमपुरा को समसामयिक संदर्भ में देखें तो ऐसा नहीं लगात कि आज बेगमपुरा जैसी अवधारणा विलुप्त हो गई है, या इस नजरिए से सोचने वालों का अकाल पड़ गया है। आज इसे गांवों की ओर से शहरों की ओर पलायन के रूप में देखा जा सकता है। यहां परिवार का कोई भी व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपनी आर्थिक व भौतिक जरूरतों की पूर्ति के लिए अपना

बेगमपुरा चुनता है। इस पलायन के पीछे व्यक्ति अपने दुख, अपनी समस्याएं और अपने गम से मुक्ति मात्र एक विकल्प होता है। यह अलग बात है कि व्यक्ति अपना बेगमपुरा गांव में बनाता है या पूरे परिवार सहित किसी शहर या कस्बे में पलायन कर वहां अपना बेगमपुरा बनाता है। इसी तर्ज पर कोई अपना बेगमपुरा विदेश में भी बना सकता है और बहुत सारे लोगों ने बनाए हुए भी हैं।

कुछ लोगों का अपने गम दूर करने का साधन शराब की शरण में जाना हो सकता है और अन्य किसी के लिए नशे के कैसे भी मार्ग खोल सकता है। कोई अपने गमों को दूर करने के लिए अनैतिक क्रियाकलाप अपना सकता है और नए गमों के लिए जमीन तैयार कर सकता है। कुछ लोग भक्ति को अपना बेगमपुरा बना सकता है और इसका कैसा भी प्रयोग कर सकता है। कुछ लोग गमों और दुखों से मुक्ति के लिए आत्महत्या तक कर डालते हैं और इस संसार के गमों से मुक्त हो जाते हैं। यह अलग बात है कि ऐसे लोग खुद तो शायद मुक्त हो जाते हैं, लेकिन वे अपनों के लिए गमों का संसार बसा जाते हैं। अगर एक लाइन में कहूं तो यह सारा खेल निजता का है और निजता के अतिरिक्त कुछ नहीं। आज के तथाकथित साधु, संतों और बाबाओं

के बारे में उनके बेगमपुरा के बारे में पहले टिप्पणी कर चुका हूं, इसलिए यहां टिप्पणी करना उचित नहीं है।

अंत में लाख टके का सवाल अभी भी मौजूद है कि इतने सारे बेगमपुरा हो सकते हैं, तो ऐसा खास क्या है जो संत रैदास को चर्चा के केन्द्र में लाता है और उनके चिंतन-दर्शन पर बात करने को विवश करता है। निस्संदेह यह महत्वपूर्ण सवाल है, इस पर भी चर्चा होनी चाहिए। दरअसल, अकेला तो कोई पशु भी जैसे-तैसे अपना जीवनयापन कर लेता है, लेकिन लोक-कल्याण के लिए जीना या सामूहिक बेहतरी के साथ जीवनयापन करना इंसानों का काम है। यह लोक-कल्याण व सामूहिक बेहतरी की अवधारणा ही इंसान को जानवर से अलग करता है। संत रैदास की सामूहिक कल्याण की अवधारणा यानी बेगमपुरा संत रैदास के कद को विशाल ऊंचाइयां प्रदान करता है। संत रैदास का सत्ता को चुनौती देना और पूरे समाज में अमूलचूल परिवर्तन की दिशा में संघर्षरत होना संत रैदास को साहसी और प्रासंगिक ही नहीं बनाता, बल्कि अनुकरणीय भी बनाता है। संत रैदास का चिंतन-दर्शन इतना व्यापक है कि मुझ जैसे साधारण से व्यक्ति लिए अंजुलीभर निकाल पाना दुर्लभ कार्य है। मैंने सिर्फ बेगमपुरा की अवधारणा को लेकर एक साधारण-सा प्रयास किया है। शेष इस विषय के विशेषज्ञों पर निर्भर करेगा कि वे बेगमपुरा की अवधारणा को किस रूप में देखते हैं।